षष्ठम् अध्याय

भारतीय रंगमंच की परम्परा में संगीत का स्थान,
महत्व, उद्‌देश्य व उपादेयता

VI भारतीय रंगमंच की परम्परा में संगीत का स्थान, महत्व, उद्देश्य व उपादेयता

6.1 संगीत का महत्व : मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समस्त प्राणी सदैव सुख की प्राप्ति हेतु प्रयासरत् रहते हैं। सुख से तात्पर्य मस्तिष्क के तनाव–रहित अवस्था को प्राप्त करने से हैं इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को ईश्वर की सत्ता में विश्वास, ईमानदारी, साहस एवं परिकल्याण आदि नैतिक गुणों को जीवन–शैली में शामिल करना होता है। मनुष्य हृदय से इन गुणों को प्राप्त करना चाहता है, पर परिस्थितिवश उनके चरित्र में कुछ कमियाँ रह जाती हैं, उन्हें वह कल्पना के द्वारा पूर्ण करता है। वह उन गुणों को दूसरों में भी देखता है। दूसरों के साथ उसके अन्य मनोभाव भी जुड़े रहते हैं, परंतु नाटक देखते समय पात्रों के साथ दर्शक का साधारणीकरण हो जाता है और उसे सुख की एवं आनंद की प्राप्ति होती है। इस प्रकार नाटककार का यह दायित्व है कि नाटक के द्वारा समाज में मानवीय गुणों को प्रोत्साहित करें।[1]

रंग–कर्म, कला की सभी विधाओं में एक सर्वोच्य कला है, जिसमें इस जीवन से संबंधित सभी कलाओं का समावेश है। फिर चाहे वह कताई–बुनाई हो या भवन निर्माण, चित्रकारी हो या मूर्तिकला, केशसज्जा हो या रूप–सज्जा, मंच–सज्जा हो या वस्त्रसज्जा। संगीत (जिसमें गायन, वादन एवं नृत्य तीनों कलाओं का समावेश है) नाटक में दर्शकों पर एक अद्‌भुद प्रभाव छोड़ता है। उदाहरण के रूप में अभिनेता को मंच पर पत्थर की मूर्ति बनाते हुए, दो तरह से दिखा सकते हैं– एक तो छेनी–हथौड़ी का अभिनय करते हुए, दूसरे छेनी–हथौड़ी के अभिनय के साथ ही हम पत्थर की आवाज भी डाल दें। स्वाभाविक है कि दूसरा दृश्य अधिक प्रभावशाली रहेगा। दूसरा उदाहरण–किसी दृश्य में घोड़ों पर बैठे सैनिक दौड़े चले आ रहे हैं। इस दृश्य में अभिनेता एक घुड़सवार की तरह शारीरिक मुद्राएँ बनाता एवं दौड़ता हुआ आता है। इसी दृश्य में यदि हम घोड़े की टापों का संगीत डाल दें, तो दृश्य और अधिक प्रभावशाली बन जायेगा। इसी प्रकार खुशी के दृश्य को केवल अभिनय एवं संवाद से दर्शाने की जगह यदि हम गायन, वादन एवं नृत्य दिखाकर अभिव्यक्त करेंगे, तो उत्तम रहेगा। इसमें भी गायन, वादन, 'म्यूजिक पिट' से एवं नृत्य मंच से करेंगे, क्योंकि यदि अभिनेता गाना नहीं जानते हों, तो पहली स्थिति की अपेक्षा प्रभावी रहेगा, परंतु यह दृश्य सर्वाधिक प्रभावशाली तब रहेगा, जब हर एक अभिनेता गायन, वादन एवं नृत्य जानता है। जिसके फलस्वरूप मंच पर ही वाद्य–यंत्रों के साथ सब नाच–गा रहे हों। अतः बिना संगीत के नाटक अधूरा एवं बिना संगीत के ज्ञान के अभिनेता या रंग–कर्मी अधूरा है।

नाटकों में संगीत का प्रयोग प्रारंभ से ही होता आया है। जयशंकर प्रसाद के काल के बाद नाटकों में से संगीत धीरे–धीरे लुप्त होता चला गया। तीस वर्षो के बाद–करीब सत्तर के दशक से जब प्रगतिशील, जनवादी लेखन आगे बढ़ा, तब संगीत की आवश्यकता महसूस हो गई। धीरे–धीरे संगीत, नाटक के साथ जुड़ता चला गया। जुड़ता भी क्यों न? संगीत के बिना नाटक तो क्या, यदि हम यों कहें कि संगीत के बिना जिंदगी अधूरी है, तो कोई अतिश्योक्त नहीं होगी। निजी जिंदगी में भी आम आदमी संगीत से किसी–न–किसी रूप में जुड़ा ही रहता है–चाहे प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हो अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, सुनना पसंद करता हो या गाना, लोक संगीत से जुड़ा हो अथवा शास्त्रीय संगीत से, 'रवीन्द्र' संगीत से या 'वैस्टर्न' संगीत से।

संगीत दुनिया में हर आदमी की पसंद है। यदि आदमी को संगीत से परहेज है, तो या तो वह विक्षिप्त, अर्द्धविक्षिप्त, मानसिक रोगी अथवा किसी अन्य तरह से रोगी होगा। अन्यथा संगीत से तो कई रोगों के इलाज तक हो जाते हैं। संगीत से अलग हम इसलिए भी नहीं रह पाते हैं, क्योंकि हम जिस प्रकृति में, जिस सृष्टि में पैदा हुए हैं, जिस धरती पर रहते हैं, वह खुद लय–ताल–बद्ध है, संगीतमय है। सेकेंड, मिनट, घंटा, दिन, रात, महीना, वर्ष, सर्दी, युग, महायुग सभी तो अपनी आवृत्ति और पुनरावृत्ति में लय–ताल–स्वर बद्ध है हम प्रकृति से हटकर कुछ करते हैं, तो वह अच्छा नहीं लगता। ठीक इसी प्रकार लय–ताल–स्वर से हम जब भी भटकते हैं, तो वह भी अच्छा नहीं लगता है। हमने जन्म ही इसी लय–ताल–स्वर बद्धता में लिया है और मृत्यु भी इसी में होती है। इसीलिए जन्म के समय संगीत, मृत्यु पर संगीत, शेष जिंदगी में संगीत, अर्थात् संगीत हमारी रग–रग में बसा है। संगीत के बिना हम अधूरे हैं। संगीत एक कला नहीं, विज्ञान है। एक विज्ञान नहीं कला है या यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि संगीत एक कलायुक्त विज्ञान है और इसलिए संगीत को कला या विज्ञान के छात्र की अपेक्षा विज्ञान का कलाकार अथवा छात्र अच्छी तरह से समझ सकता है। एक संगीत–साधक अच्छा गायक, वादक और नृर्तक हो सकता है, लेकिन जानकार नहीं; क्योंकि उसने जितना रियाज किया उतना ही जानता है। एक संगीत शिक्षक अच्छा ज्ञाता हो सकता है, अच्छा गायक, वादक अथवा नर्तक नहीं; क्योंकि संगीत रियाज माँगता है, परंतु शिक्षा के साथ–साथ यदि रियाज भी हो और शिक्षा में भी यदि विज्ञान की शिक्षा और विज्ञान में भी यदि गणित विषय के साथ शिक्षा हो, तब संगीत को समझना और उसकी गहराइयों तक जाना बिल्कुल आसान हो जाता है।

जब संगीत के बिना हमारी जिंदगी अधूरी है, तो फिर संगीत के बिना रंग–कर्म पूर्ण कैसे हो सकता है? इसी आवश्यकता को समझते हुए संगीत को पुनः रंग–कर्म में समावेशित करना पड़ा, क्योंकि बिना स्वर के उतार–चढ़ाव (मोड्यूलेशन ऑफ वाइस या टॉंग्व) के संवाद प्रभावी कैसे बन सकते हैं। बिना ताल की जानकारी के हमारा चलना–फिरना या 'बॉडीलैंग्वेज' कैसे प्रभावी हो सकती है और बिना मोड्यूलेशन ऑफ वाइस या 'बॉडीलैंग्वेज' के हमारा अभिनय प्रभावी कैसे हो सकता है? अतः बिना संगीत के नाटक मनोरंजक कैसे हो सकता है? इसलिए नाटकों में संगीत को समावेशित करना पड़ा।

मोटे तौर पर करीब 99 प्रतिशत आबादी संगीत सुनना पसंद करती है। इसमें से करीब 60 प्रतिशत व्यक्ति 'बाथरूम सिंगर' होते हैं, 40 प्रतिशत व्यक्ति या तो संगीत सीख रहे होते हैं या सीखना चाहते है। 10 प्रतिशत व्यक्ति संगीत की जानकारी रखते हैं। 5 प्रतिशत व्यक्ति संगीत से व्यावसायिक रूप से जुड़े हैं। 2 प्रतिशत व्यक्ति संगीत की गहन जानकारी रखते हैं। इन्हीं में से कुछ अच्छे गायक, वादक अथवा संगीतकार बनते हैं।

जिन नाटकों में संगीत प्रधान होता है, वे अधिक चर्चित हो जाते हैं, परंतु संगीत प्रधान नाटकों का मंचन कोई आसान काम नहीं होता। ऐसे नाटकों में संगीत निर्देशक की भूमिका, नाट्य–निर्देशक की भूमिका से कई गुना अधिक बढ़ जाती है, क्योंकि नाट्य–निर्देशक की मुख्य भूमिका तो अधिकतर रिहर्सल के समय ही रहती है और इस समय भी निर्देशक दृश्यों की ब्लाकिंग को किश्तों में तैयार करके, नाटक को रिहर्सल फ्लोर पर ही खड़ा करके, मंचन के समय दायित्व से मुक्त रहता है, जबकि संगीत निर्देशक तो रिहर्सल के समय से लेकर मंचन के समय

तक मुक्त नहीं हो पाता है, बल्कि मंचन के समय तो पूरे नाटक का एकमुश्त भार संगीत निर्देशक के कंधों पर ही होता है।

अभिनय सीखना संगीत सीखने की अपेक्षा आसान है। संगीत सीखना कोई ऐसा काम नहीं कि बीस दिन की रिहर्सल से ही शो में अपना रोल अदा कर दिया। यहाँ वर्षों लग जाते हैं–स्वर और ताल को समझने मात्र में, क्योंकि स्वर और ताल को समझना अंदर की बात है; अंतर्रात्मा की बात है। ईश्वर को समझना भी अंतर्रात्मा की ही बात है। अतः यदि संगीत समझ लिया, तो ईश्वर से भी साक्षात्कार संभव है। संगीत, अभिनय जैसी बाहर से देखने की कला नहीं है। संगीत के क्षेत्र में कुछ करने लायक आदमी दस पन्द्रह वर्ष की मेंहनत और गहन लगन के बाद ही हो पाता है।

रंगमंच के क्षेत्र में संगीत निर्देशन को कई भागों में विभाजित किया जा सकता है, जो निम्न लिखित है–

6.1.1 संगीत रचनाकार

जो गीतों, गजलों, भजनों आदि की मूल धुन बनाता है। संगीत निर्देशक के रूप में संगीत रचनाकार सर्वोपरि होता है। इसके लिए संगीत का ज्ञान होना अति आवश्यक है, क्योंकि मूल धुन बनाना हर सांगीतिक व्यक्ति के बस की बात नहीं। इसके लिए ईश्वरीय प्रेरणा–शक्ति का मिलना अति आवश्यक है, जिसके बिना अच्छी संगीत रचना संभव नहीं। एक अच्छा संगीत रचनाकार बुरा संगीत संचालक भी हो सकता है।

6.1.2 संगीत संचालक

जो व्यक्ति मंचन के समय म्यूजिकपिट से संगीत संचालित करता है अथवा वादकों को बतलाता जाता है कि किस 'डॉयलाग' के बाद इफैक्ट देना है तथा क्या बजाना है या क्या गाना है, संगीत संचालक कहलाता है। संगीत रचनाकार कोई अन्य भी हो सकता है। वह मंचन के समय उपस्थित अथवा अनुपस्थित भी हो सकता है, पर मंचन के समय संगीत संचालक संगीत को संचालित करता रहेगा। ऐसे समय संगीत संचालक की भूमिका ही अति महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि संगीत रचना भले अच्छी की गई हो, परंतु यदि प्रापर क्लू या सही वक्त पर उसे नहीं बजाया अथवा गाया गया, तो वही संगीत नाटक को बिगाड़ सकता है। इस वक्त क्लू, संगीत और स्वर याद रखना महत्वपूर्ण हो जाता है। एक अच्छा संगीत संचालक संगीत का अल्प जानकार भी हो सकता है।

6.1.3 संगीत संयोजक

जो फिल्मी गीतों की पैरोडी, लोकधुनों या अन्य प्रचलित धुनों का इस्तेमाल नाटक में मूल रूप में करता है या इन प्रचलित धुनों में गीतों आदि को ढालता है, अतः विभिन्न प्रचलित गीतों, गजलों, भजनों, शास्त्रीय संगीत, वैस्टर्नम्यूजिक अथवा किसी अन्य संगीत का उपयोग नाटक में करता है, संगीत संयोजक कहलाता है। इसके लिए संगीत का अच्छा जानकार होना अथवा अच्छा संचालक होना जरूरी नहीं है।

6.1.4 संगीत नियंत्रक

जब संगीत पक्ष में गायक, वादक दल अल्पज्ञ अथवा स्वर–ताल से विहीन मिल जाते हैं और नाटक में ऐसे लोगों से काम निकालना मजबूरी हो जाती है। ऐसे दल का मुखिया संगीत नियंत्रक बन जाता है, क्योंकि सबको स्वर–ताल में लाना पड़ता है, जो कि अत्यंत कठिन कार्य है। कई बार असंभव कार्य भी बन जाता है। संगीतदल का मुखिया ज्ञानी भी हो सकता है, परंतु संगीत में पूरी नाटक मंण्डली को पारंगत करना कोई आसान काम नहीं है। ऐसे अधिकतर केस में संगीतदल का मुखिया भी संगीत का कम जानकार ही होता है, क्योंकि यदि ज्ञानी होगा, तो वह खुद ही गा–बजाकर संगीत पक्ष को मजबूती प्रदान कर देगा। अतः संगीत नियंत्रक अपने आप में एक संकेत है कि जैसे बिना लगाम के घोड़ों को नियंत्रित करने की कोशिश हो रही हो। यह संगीत नेत्रत्व की एक निम्न अवस्था है।

6.1.5 संगीत व्यवस्थापक

जो संगीत से संबंधित उपकरण, जैसे–तबला, हारमोनियम, ढोलक आदि की व्यवस्था करता अथवा करवाता है एवं गायक–वादक दल की व्यवस्था करता है एवं नाटक की रिहर्सल से लेकर मंचन तक देखभाल करता है, संगीत व्यवस्थापक कहलाता है। हो सकता है, संगीत व्यवस्थापक का संगीत से दूर–दूर तक का वास्ता न हो, पर नाम संगीत पक्ष में ही समाहित होता है।

संगीत :

जब इन पाँचों में से कुछ भी सुपरिभाषित या सुनिश्चित नहीं होता है, तब इस शब्द का उपयोग किया जाता है।

Sangeet Natak Akademi

नाटकों में संगीत स्वतंत्र होता है, हमारी वास्तविक जिंदगी की तरह। परंतु संगीत का जितना महत्व हमारी जिंदगी में है, उससे कहीं अधिक नाटक में है, क्योंकि हमारी वास्तविक जिंदगी में धटनाएँ धीरे–धीरे चलती हैं, जबकि नाटक में घटनाक्रम बड़े जल्दी–जल्दी चलते एवं बदलते हैं। हमें दो या तीन घंटों में ही सारी घटनाओं को रोचक अंदाज में पिरोना होता है। इसलिए घटनाक्रमों को अधिक प्रभावशाली बनाना होता है। इस कार्य में संगीत का महत्वपूर्ण योगदान

होता है। नाटक–जिंदगी का कैप्सूल रूप होता है या गागर में सागर को भरना होता है। यह कार्य संगीत की सहायता से बड़ी आसानी एवं मनोरंजक ढंग से पूरा होता है, क्योंकि रंग–कर्म का अंतिम उद्‌देश्य मनोरंजन ही है और मनोरंजन संगीतविहीन हो ही नहीं सकता। इसलिए संगीत, नाटक का अभिन्न अंग है।[2]

रंगमंच में संगीत और नृत्य का महत्व

समकालीन रंग–कर्म में संगीत और नृत्य की वर्तमान स्थिति का आंकलन करते हुए उसके सार्थक उपयोग की दिशाएँ खोजना रंगमंच के हित में बहुत महत्वपूर्ण हो सकता है; लेकिन इस परिसंवाद में वक्ता प्रायः यह मानकर चलते हैं कि प्राचीन भारतीय रंगमंच की तुलना में आज के रंगमंच पर संगीत और नृत्य बहुत अंशों में उपेक्षित है। ब.व. कारन्त का कथन है कि ''पहले संगीत में नाटक होता था। यह संगीत–नाटक कहलाता था।''

प्राचीन नाटकों में भी संगीत का महत्वपूर्ण स्थान तभी सिद्ध किया जा सकता है, जब संगीत शब्द का प्रयोग व्यापकतर अर्थ में किया जाए। मालविकाग्निमित्रम् में नायिका मालविका को नाट्य की शिक्षा दी जाने का प्रसंग आया है। उसके शिक्षक उसे 'अभिनय' सिखाते हैं। इसलिए उनका उल्लेख 'नाट्याचार्य' और 'अभिनयाचार्य' के रूप में हुआ है।

जहाँ संगीत–नृत्य नाटक की सर्जनात्मक समग्रता का वाहक न हो, उसे नाटक में आवश्यकतानुसार बीच–बीच में स्थान दिया गया हो, वहाँ भी वह नाटक की आवयविक समग्रता का एक अविभाज्य अंग हो सकता है। इस कोटि की नाट्य रचना में संगीत–नृत्य सम्प्रेषण के विभिन्न उपादानों में से एक होता है। कण्ठ–संगीत, वाद्य–संगीत तथा नृत्य, तीनों का इस प्रकार का उपयोग नाटककार कर सकता है। संगीत की अपनी सम्प्रेषण–क्षमता को नाटककार कभी–कभी अन्य उपादानों के योग से और भी बढ़ा सकता है। नाटक में संगीत–नृत्य का एक और प्रयोजन प्रेक्षकों की संख्या में वृद्धि भी हो सकता है।

अब जब एक ओर रंगमंच अनुकरण या यथार्थभास से अभिव्यक्ति की ओर जा रहा है और दूसरी ओर लोकप्रिय रंगमंच की आवश्यकता अनुभव की जा रही है, तब संगीत और नृत्य रंगमंच के लिये दोनों दिशाओं में, भिन्न–भिन्न प्रकार से ही सही, निश्चित रूप से श्रेय एवं प्रेय सिद्ध होगा।

यदि लोकरंग का अन्तर्भाव रंगमंच में स्वीकार किया जाए, तो मानना होगा कि 'ख्याल' जैसे लोक–नाट्य लोकसंगीत–समन्वित होते हैं, अतः संगीत–नाटक की श्रेणी में ही आते हैं। 'ख्याल' शैली का सहारा आज शहरी रंगमंच के लिए नाटक लिखने में भी लिया जाने लगा है। काव्य नाटक भी संगीतात्मक नाटक होते हैं, क्योंकि बिना लय के संवादों से रहित कोई काव्य–नाटक नहीं हो सकता।

नाटक की महत्ता

समस्त साहित्यांगों में केवल नाटक ही कला और साहित्य के अंतर्गत आने वाले सभी रूपों–नृत्य, संगीत, चित्र, स्थापत्य, मूर्ति, कविता, उपन्यास, कहानी एवं गद्य गीत प्रभृति का सारसंगम व मिश्रित रूप है। नाटक की रंगभूमि स्वतः वास्तुकला का एक उदाहरण होती है। मूर्तियां, चित्र एवं पट उसकी शोभा के विभिन्न उपकरण हैं। पुनः वेशभूषा, मेक–अप और प्रकाश–क्रीड़ा के विधान उसकी प्रभविष्णुता को द्विगुणित करते है। नृत्य और संगीत यदि आवश्यकतानुसार समाविष्ट किये जायें तो उसकी रसात्मकता में पर्याप्त वृद्धि होती है। गद्यात्मक वार्तालाप उसके अनिवार्य अंग हैं। इनके द्वारा ही कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण होने के साथ जीवनोचित उपदेश व्यंजित किये जाते है। आचार्य भरत मुनि ने भी नाट्यशास्त्र में स्पष्ट किया है कि योग, कर्म, सारे शास्त्र संपूर्ण शिल्प तथा विविध कार्यों में ऐसा कोई कार्य नहीं, जो नाटक में न पाया जाता हो। उनके अनुसार नाटक–पाठ्य (संवाद) गीत, अभिनय (क्रियाकलाप) और रस की अभिव्यंजना है। अभिनयदर्पणकार नंदिकेश्वर ने भी इसे चारों वेदों का सारतत्व कहते हुए ब्रह्मानंद से भी अधिक आनंद देने वाला बताया है। शारदातनय के अनुसार विभिन्न रूचि और स्वभाव के लोग अपने–अपने शिल्प, श्रृंगार, व्यवसाय, क्रिया और वाणी–सभी कुछ नाटक में पा सकते है। कालिदास ने भी मालविकाग्निमित्र में नाटक की प्रशंसा करते हुए कहा है कि भिन्न–भिन्न रूचि वाले सब लोगों को अकेला नाटक ही तृप्त करता है।

नाटक मानव–जीवन की सांकेतिक अनुकृति न होकर सजीव प्रतिलिपि वा वास्तविक जीवन–कथा एवं सजीव प्रतिच्छवि है। राजेन्द्रसिंह गौड़ के शब्दों में, ''नाटक हमारी भावनाओं का , हमारे भूतकालीन गौरव का, हमारे इतिहास और पुराण का, हमारी वर्तमान समस्याओं का दृश्य रूप है। उसमें हमारी सुरूचि–कुरूचि है, हमारी सफलता–विफलता है, हमारा उत्थान–पतन है, हमारी शुचिता–अशुचिता है, हमारे जीवन की समस्त निधियाँ है। नाटक प्रत्येक संस्कृति का देवदूत है, अजीज के अस्थिपंजर में भी जीवन का वर्तमान रूप उपस्थित करता है। जीवन के समान इसका क्षेत्र व परिधि अत्यंत विस्तृत एवं विशाल है। नाटक में नाट्य–निर्देश, अभिनय, दृश्य–विधान, वेश–भूषा, रंगप्रदीपन तथा नाटक के अन्य तत्व सभी मिलकर एक सम्मिलित प्रभाव उत्पन्न करते है। यही कारण है कि इसमें मानव–जीवन की सजीव, मूर्त्त एवं स्पष्ट झांकी अत्यंत सरलता से देखी जा सकती है। अतः जातीय जीवन के निर्माण तथा समाज के उत्थान में नाटक सर्वोत्तम प्रयत्न सिद्ध हो सकता है।[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि नाट्यकला प्रभावात्मकता, व्यापकता एवं प्रसार की दृष्टि से साहित्य का परम सशक्त रूप है।

6.2 भारतीय रंगमंच की परम्परा में संगीत का स्थान

हमारे रंगमंच की परम्परा में संगीत का एक महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में संगीत ही रंगमंच की आत्मा हुआ करता था। महाराष्ट्र में तो संगीत–नाटक की विशिष्ट परम्परा अस्तित्व में आयी। गुजरात में भी कुछ–कुछ संगीत नाटक रचे गए, पर महाराष्ट्र में यह जितना प्रचलित एवं विकसित हुआ, उतना गुजराज में नही हुआ। फिर भी किसी भी रंगमंच में संगीत का हिस्सा अभिन्न एवं अहम् रहा है।[4]

रंगमंच एक कला है। कला का उद्भव मानव–मन में सचराचर जगत के घात–प्रतिघात से उत्पन्न प्रभाव की अभिव्यक्ति की यही उत्कृष्ट आकांक्षा वर्तमान है। सत्य तो यह है कि रंगमंच किसी एक कला का नहीं, समस्त ललित कलाओं का आगार है। इसके अन्तर्गत काव्य, संगीत, चित्रकला, स्थापत्य आदि सभी कलाओं का समावेश है। इसके संबंध में भरत ने कहा है कि ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग या कर्म नहीं है, जो इस नाट्य में न हो।

6.2.1 रंगमंच और काव्य–

रंगमंच और काव्य का चोली–दामन का सम्बन्ध है। रंगमंच वह कैनवास है जिसकी पृष्ठभूमि पर काव्य के अमूर्त भाव को अभिनय या रंग–कार्य द्वारा मूर्त बनाया जाता है। काव्य की लिपि का प्रत्येक वाक्य, वाक्य का प्रत्येक पद, पद का प्रत्येक शब्द अर्थपूर्ण बन जाता है। काव्य की, विशेषकर दृश्यकाव्य की, जो काव्य का ही एक अंग है, सार्थकता उसके मंचस्थ होने में ही है। मंच–निरपेक्ष दृश्यकाव्य या नाटक को पाठ्य नाटक कह कर भले ही उसे साहित्य की वस्तु मान लिया जाय, किन्तु वस्तुतः उसे 'दृश्य काव्य' की संज्ञा नहीं दी जा सकती। अतः नाटककार को नाट्य–शिल्प के साथ मंच–शिल्प का पूरा ज्ञान होना चाहिए। इसी प्रकार प्रयोक्ता को मंच–शिल्प के साथ नाट्य–शिल्प की पूरी जानकारी होना चाहिए, जिससे वह नाटक की अभिनय द्वारा न केवल अनुकृति या व्यावस्था कर सके, वरन् उसका प्रत्यक्षीकरण भी करा सके। सीमित अर्थ में काव्य काव्यत्वपूर्ण पद्य का वाचक है। यह आवश्यक नही कि सारे संवाद काव्यपूर्ण हों, परन्तु भावकतापूर्ण स्थलों पर काव्यपूर्ण संवाद नाटक में चार चाँद लगा देता है। नाटक के गीत आदि काव्य के ही अंग हैं। काव्य का नाटक पर कभी–कभी इतना प्रभाव पड़ता है कि पूरा नाटक ही छंद, गीत आदि के साथ युक्त होकर सामने आता है। ऐसे नाटक काव्य–नाटक, पद्य–नाटक या गीत–नाटक कहे जाते हैं।

रंगमंच और काव्यकला

6.2.2 रंगमंच और संगीत– संगीत ने अनादि काल से मानव–मन, मानव–सभ्यता और मानव–साहित्य को प्रभावित किया है। संगीत के इस ऋण को स्वीकार कर भरत ने अपने नाट्य–शास्त्र में पूर्वरंग के अन्तर्गत वादन, गायन और नृत्य की बड़ी व्यापक व्यवस्था की है तथा आतोद्य, तत, सुषिर तथा अवनध वाद्यों, ताल, ध्रुवा आदि का विस्तार से विवेचन किया है। नृत्य के सम्बन्ध में 108 करणों एवं 32 अंगहारों से युक्त जिस नृत्त (या ताण्डव नृत्य) का वर्णन भरत ने किया है, वह आगे चलकर उनके नाम पर 'भरतनाट्यम' के नाम से ही विख्यात हो गया। कुछ विद्वांन 'नृत्य' को 'नाट्य' से भिन्न मानते है और 'भरतनाट्यम' को बहुत बाद का, अपितु देवदासियों द्वारा विकसित नृत्य–रूप बताते हैं।

रंगमंच और संगीत

6.2.3 रंगमंच एवं चित्रकला– भरत के नाट्यशास्त्र में नाट्य–मण्डप की सजावट के लिये 'चित्रकर्म' की बात कही गयी है। मण्डप की भीतरी दीवालों पर मिट्टी तथा भूसा मिलाकर पलस्तर बनाया जाता था, जिसे चिकना करने के लिये बालू, सीपी और पिसे हुये शंख के लेप किये जाते थे और फिर उस पर चूने से सफेदी कर स्त्री–पुरूषों, लताबन्धों, विविध मानव–चरितों आदि का रंगों से चित्रण किया जाता था। भरत के युग में चित्र–कर्म नाट्य–वेश्म (रंगशाला) की शोभा बढ़ाने तथा पृष्ठभूमि तैयार करने के लिये प्रयुक्त होता था। परदे अथवा दृश्यबंध (सेटिंग) पर बदलती हुई परिस्थितयों के साथ बदलता हुआ दृश्यविधान इसी चित्रकला के माध्यम से उपलब्ध हो जाता है। इस कार्य में आधुनिक विद्युत–यंत्रों, यथा आलोक चित्रोत्पादक लालटेन या प्रक्षेपक (प्रोजेक्टर) आदि ने सहयोग देकर दृश्यविधान में एक क्रांति उत्पन्न कर दी और नये युग का सूत्रपात किया है। आलोक–यंत्रों के सहयोग से समुद्र में जलयान, तूफान, जलप्लावन, अग्निकाण्ड, चलते हुये बादल आदि सभी कुछ दिखाये जा सकते है, जो मंचीय चित्रकला के अब आवश्यक उपजीव्य बन गये हैं।

रंगमंच और चित्रकला

6.2.4 रंगमंच और मूर्तिकला– मंच पर कभी–कभी पुतलियों अथवा मूर्तियों को भी दिखाने की आवश्यकता होती है यह काम चित्रकला द्वारा संभव नही हैं, क्योंकि

रंगमंच और मूर्तिकला

चित्रकला द्वारा उन्हें सरलता से त्रि–भुजीय (थ्री–डाइमेंशनल) रूप नहीं दिया जा सकता। इसके लिये ऐसे मूर्तिकार की आवश्यकता होगी, जो हथौड़ी–छेनी लेकर इस प्रकार की मूर्ति तैयार कर सके। खर्च को कम करने की दृष्टि से 'प्लास्टर ऑफ पेरिस' से भी इस प्रकार मूतियाँ तैयार की जा सकती हैं।

6.2.5 रंगमंच और स्थापत्य– भरत और उसके समवर्ती युग में स्थायी नाट्य–मण्डप बनाये जाते थे, जिनमें लकड़ी, ईंट, चूने, भित्तिलेप आदि का उपयोग होता था। भरत के नाट्यशास्त्र में रंगमंडप के तीन भागों–रंगपीठ, रंगशीर्ष तथा नेपथ्य में विभाजन और मत्तवारणी के निर्माण का विस्तृत विवरण मिलता है। इसी प्रकार प्रेक्षागृह की लम्बाई, चौड़ाई और उनके प्रकारों का वर्णन भी नाट्यशास्त्र में उपलब्ध है। इस प्रकार प्रारंभ से ही प्रेक्षागृहों और रंगमंच के विधान में स्थापत्य को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। उस काल में भी रंग–मण्डप द्विधरातलीय बनते थे, जिससे पृथ्वी और स्वर्ग, प्रासाद और राजसभा आदि के दृश्य दिखलाये जा सकते थे। आजकल रंगमंच पर प्रकृत दृश्य–विधान के लिये जिस प्रकार चित्रभुजीय दृश्यबन्धों (सेटिंग्स) का उपयोग किया जाता है, वे यद्यपि लकड़ी और केनवास द्वारा रंगों से रंगकर तैयार किये जाते हैं, तथापि एक प्रकार से स्थापत्य का ही आभास सा देने लगते है। मंच पर इस प्रकार ड्राइंग रूम, होटल, गैरेज, जेल, मकान के बरामदे, गाँव आदि के दृश्य वास्तविक रूप में उपस्थित किये जाने लगे हैं। स्थापत्य ही इस प्रकार के दृश्य–विधान का आधार है, यद्यपि उसमें चतुर्थ भुजा नहीं होती।

रंगमंच और वास्तुकला

इस प्रकार कुछ ललित कलायें नाटक की आत्मा को बोलने की शक्ति प्रदान करती हैं और कुछ उसे रूप या आकृति से युक्त करती हैं। काव्य और संगीत रंगमंच की आत्मा है और चित्रकला, स्थापत्य आदि कलायें उसे रूप प्रदान करती है। इस प्रकार रंग–दैवत् की स्थापना होती है। इसी से रंगमंच सभी कलाओं का अधिष्ठान है और कलायें सभी दिशाओं में अपने अधिष्ठान–रंगमंच की कीर्ति पताकायें फहराती है।

6.2.6 रंगमंचः एक विज्ञान– रंगमंच एक विज्ञान है। पदार्थ तथा तत्व के विखंडन और विश्लेषण, कार्य–कारण व्यापार की खोज और सामान्य तथ्यों के आधार पर विशेष तथ्यों के आधार पर सामान्य नियम की स्थापना, यही विज्ञान की प्रक्रिया है, जो लौकिक होते हुए भी अलौकिक–सा लगता है। विज्ञान ने नाटक को दो प्रकार से बताया है– एक ओर उसने रंगमंच के स्वरूप और शिल्प में क्रांतिकारी परिवर्तन कर ध्वनि–संकेतों, रंगदीपन और आलोकचित्रों की वैज्ञानिक व्यावस्था की है, तो दूसरी ओर उसने रंगमंच को रेडियो और टेलीविजन के माध्यम से धर–धर पहुंचा दिया है। रंगमंच का एक अन्य वैज्ञानिक रूपान्तर है– चलचित्र, जिसने कुछ समय के लिए तो स्वयं रंगमंच को भी अपनी लोकप्रियता से अपदस्थ कर दिया था, परन्तु क्रमशः रंगमंच

अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त करता जा रहा है। विज्ञान ने रंगमंच की प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्धारित सीमाओं को तोड़कर उसे पुनः चलचित्र की यथार्थता और व्यापकता प्रदान कर दी। परिक्रामी रंगमंच और त्रिभुजीय दृश्यबंधों द्वारा पृष्ठभूमि के स्थापत्य के आयोजन, आलोक–यंत्रों और आलोक–चित्रों के द्वारा यथावांछित ऋतुविपर्यय, दिन–रात के सृजन, प्रकृति के सान्निध्य आदि की व्यवस्था, ध्वनि–यंत्रों के माध्यम से प्रकृति को वाणीदान द्वारा विज्ञान के रंगमंच और चलचित्र के अन्तर को नगण्य–सा बना दिया है।

मंच पर ध्वनि–संकेत देने कि लिए ध्वनि–रिकॉर्डों और टेप–रिकार्डर के आविष्कार के पहले कुछ थोड़ी सी देर ध्वनियाँ, यथा मेघ–गर्जन, वर्षा–ध्वनि, रेलगाड़ी के इंजन के भाप छोड़ने या चलने, कार के स्टार्ट होने, घोड़े की टापों आदि की ध्वनियाँ कृतिम यंत्रों अथवा साधनों आदि किसी भी प्रकार की ध्वनि आलिखित करके सुनाई जा सकती है।

इसी प्रकार विद्युत के आविष्कार ने रंगदीपन (स्टेज लाइटिंग) में युगान्तर उपस्थित कर दिया है और नाटकों के उपस्थापन (प्रोडक्शन) को, जो पहले अधिकांशतः दिन में हुआ करते थे अथवा दीपों और मशालों के प्रकाश में ही कभी–कभी रात में भी हो जाया करते थे, विद्युत ने ही उसे वायु–तरंगों के द्वारा दृश्य से श्रव्य बना दिया है। टेलीविजन के आविष्कार ने नाटक को पुनः श्रव्य से दृश्य बना दिया है। नवीन आलोक–व्यवस्था द्वारा चलते हुए बादल और नक्षत्र, सूर्य और चन्द्रमा, वृष्टि और जल–प्लावन, अग्निकांड और ध्वंस, आदि के दृश्य बड़ी सफलता से दिखलाये जा सकते हैं। इस प्रकार आधुनिक विज्ञान ने रंगमंच पर चमत्कार उपस्थित कर दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सरसता और सामाजिक के प्रत्यक्षीकरण के लिये यह आवश्यक है कि समस्त ललित कलाओं, उपयोगी शिल्पों तथा विज्ञान की रंग–सापेक्ष्य शक्तियों का पूरा उपयोग किया जाये। कला, शिल्प और विज्ञान के समन्वय पर ही रंगमंच की सफलता निर्भर है।[5]

6.3 भारतीय रंगमंच की परम्परा में संगीत की उपादेयता

जिस प्रकार भाषा के माध्यम से ही साहित्य की ज्ञान राशि का बोध होता है, उसी प्रकार संगीत के स्वर, ताल, लय, राग के माध्यम से ही मानव भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। जिस प्रकार भाषा का उत्तम ज्ञान न होने पर उसके द्वारा व्यक्त की गयी ज्ञानराशि का अनुभव करना असम्भव हो जाता है, उसी प्रकार संगीत के कुछ आवश्यक तत्वों को जाने बिना संगीत कला का पूर्ण रसास्वादन भी असम्भव हो जाता है।

संगीत में अपने भावों को व्यक्त करने की पूर्ण शक्ति होती है। यह भी सत्य है कि संगीत के सभी पहलुओं का रसास्वादन करने का सबसे अच्छा मार्ग संगीत सुनना है और इसलिए संगीत आयोजनों में, संगीत सभाओं में संगीत रसिकों की एक अपूर्व शान्ति एवं अलौकिक आनन्द मिलता है।[6]

भरत के प्राचीन रंगमंच पर संगीत का उपयोग

नाटक से संबंद्ध संगीत का उपयोग अत्यंत रोचक और महत्वपूर्ण है। आजकल भारतवर्ष में एक नवीन, आधुनिक (यथातथ्यवादी) रंगमंच का विकास हुआ है, जिसके फलस्वरूप गणवेषक विद्वानों के या परम्परागत नौटंकी इत्यादि रूपकों का आनन्द उठाने वाले देहाती लोकसमाज के अलावा अन्य लोगों में संगीत और नाटक के उस पारस्परिक संबंध की जानकारी नहीं रही, जिसके सहारे प्राचीन भारत में दोनों का सह–विकास हुआ था। देहाती नाटक के सभी अवशिष्ट रूप पूर्णतः संगीतमय हैं। इस रूपक–संगीत के विभेद और व्यवहारशैली की जड़ भरत तक पहुँचती है और नाटक का संगीतमय प्रदर्शन एक दीर्ध और अविच्छिन्न परंपरा है। भरत के बाद कोहल ने अपने ग्रंथ में रूपक की अपेक्षा उपरूपकों का अधिक वर्णन किया है। रूपक से उपरूपक में यही विशेष अंतर है कि रूपक की अपेक्षा उपरूपक में संगीत और नृत्य का आधिक्य रहता था। कोहल के बाद अभिनव गुप्त का काल माना जाता है। उनके काल में संस्कृत नाटकों का रंगमंच पर प्रदर्शन निश्चय ही एक जीवित परम्परा थी, और उनके प्रदेश कश्मीर में, जहाँ उस युग में इतनी सुसम्पन्न कविता, नाटक, नृत्य, संगीत और समालोचना की रचना हुई।

आठवी शताब्दी के उत्तरार्ध में कश्मीर के राजा जयपीड़ के मंत्री दामोदर गुप्त ने कुट्टनिमत नामक ग्रंथ की रचना की, जिसमें महाराजा हर्ष की कृति रत्नावली नामक संस्कृत नाटक की चर्चा की गई है। गायकों का सामान्य रूप से उल्लेख तो सभी संस्कृत नाटकों में मिलता है और भरत के नाट्य–शास्त्र में तो है ही। इसके अतिरिक्त इत्सिंग ने अपने भारत–यात्रा–वर्णन में श्री हर्ष के नाटक नागानन्द के संगीत (तंत्री वाद्य और बाँसुरी) नृत्य तथा मुखमुद्राओं सहित रंगमंच पर अभिनीत किए जाने का उल्लेख किया है।

मौलिक और असली नाटक तो वस्तुतः संगीत और नृत्य से शून्य रहे ही नहीं। भारतीय नाटकों में अनायास ही कविता संगीत बन जाती थी और कार्यव्यापार (ऐक्शन) नृत्य। नाटक क्या, कवितापाठ तक किसी भारतीय द्वारा आज भी बिना राग के हो ही नहीं सकता। भरत कहते है– बिना संगीत के नाटक शुष्क होता है। ऐसी कोई भी नाट्य परिस्थित नही, जिसका उत्कर्ष संगीत

द्वारा न किया जा सके। नाटक के प्रारंभिक संगीत का उद्देश्य है दर्शकों को ठीक–ठीक सहृदय बनाना।[7]

भारतीय रंगमंच में संगीत की विशेषताएं

जीवन के अनेक क्षेत्रों में संगीत की विशेषताओं का व्यापक रूप सामने आया है। विज्ञापन–संगीत एवं धुनें, पार्श्व–संगीत, फिल्म संगीत, संगीत निर्देशन, संगीत–फीचर, संगीत–नाटिका, ऑपेरा, वाद्यवृन्द, सहगान, समूहगान, संगीत प्रेक्षागृह तथा ध्वन्यांकन कक्ष (रिकार्डिंग स्टूडियो) तथा ध्वन्यांकन प्राविधिक अभियांत्रिकी एवं तकनीक, दूरदर्शन, आकाशवाणी, उच्चानुशीलन, संगीत शास्त्र के रूप में संगीत की नयी संभावनायें सामने आ रही है।[8]

6.4 भारतीय रंगमंच की परम्परा में संगीत का उद्देश्य

उद्देश्य तत्व नाटक की आत्मा है, क्योंकि बिना किसी सुनिश्चित उद्देश्य तथा प्रेरणा व अनुभूति के धरातल से लिखा गया नाटक शक्ति एवं प्रभावोत्पादकता के गुण से वंचित ही होता है। वास्तव में यही वह तत्व है, जिसे व्यंजित एवं चरितार्थ करने के निमित्त नाटककार कथानक, पात्रों एवं शैली की अवतारणा करता है। प्रत्येक नाटककार की परिस्थितियां, स्वभाव एवं रूचियां भिन्न–भिन्न होती हैं। वह अपनी समसामयिक समस्याओं व उलझनों को अपने ही दृष्टिकोण से अंकित अथवा विश्लेषित कर समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करता है, जिससे उसकी वस्तु निर्माण–योजना वा घटनाओं के स्वरूप तथा चरित्रिक उद्भावनाओं में अंतर पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त ये तत्व तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों से भी सदैव अनुप्रमाणित होते रहते हैं।

व्यापक रूप से नाटक का उद्देश्य अन्य साहित्यों के समान मानव–जीवन की यथार्थ और कलात्मक व्याख्या या विवेचना करना है। कई नाटककारों का उद्देश्य जीवन की विभिन्न समस्याओं, उलझनों कठिनाइयों तथा संधर्षों की व्यंग्यपूर्ण झांकी दिखाकर निदान व्यंजित कर देना होता है। ऐसे नाटकों में मनोवैज्ञानिक अनुभूति ही प्रधान रूप से मिलती है, जिसमें युग–चेतना, मनोवैज्ञानिक और व्यक्तित्व–विश्लेषण तीनों का सामंजस्य रहता है। कई नाटककार विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक प्रश्नों व समस्याओं को लेकर उनके यथार्थ चित्रण एवं स्पष्टीकरण के पश्चात् समाधान प्रस्तुत कर देना, अपनी समस्याओं का उद्देश्य निर्धारित करते हैं। कभी नाटककार कथानक अथवा किसी पात्र को मनोवैज्ञानिक, बुद्धिसंगत एवं तर्कसंगत रूप देना आवश्यक समझकर, उसी के अनुरूप अपनी नाट्य–रचना करता है। आधुनिक अधिकांश पौराणिक नाटकों के गुणों के उद्धाटन अथवा आदर्शों के प्रतिपादन के अनुरूप ही कथा को ढाला जा सकता है। आधुनिक अधिकांश ऐतिहासिक नाटक इसी प्रकार के हैं। उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध है कि उद्देश्यों में विभिन्नता हो सकती है, किन्तु उसका मेरूदंड मानव–जीवन ही रहता है। कोई भी रचना अनुभूतियों व शक्तिशाली भावावेगों और संवेदनाओं से संपन्न होकर उच्चकोटि की बन सकती है किन्तु इन (अनुभूतियों एवं भावावेगों) की गहनता नाटककार के महान लक्ष्य एवं प्रेरणा पर ही निर्भर है।

भारतीय आचार्यों ने उद्देश्य के स्थान पर रस को विशेष महत्व प्रदान किया है और इसे ही नाटक की आत्मा मानते हुए अन्य तत्वों को उनका अनुवर्ती बताया है। हमारे नाट्यसाहित्य में इसी के द्वारा प्रकारांतर से असत्य पर सत्य की और अन्याय पर न्याय की विजय प्रदर्शित की जाती थी। रस या भावानुभूति–पाश्चात्य आचार्यों के अनुसार सक्रियता और समष्टि प्रभाव अथवा प्रभान्विति को भी अधिकांश नाटकों का उद्देश्य माना जा सकता है।[9]

6.5 रंगमंच कलाकारों के साक्षात्कार

: श्री ज़फ़र ख़ान असिस्टेंट प्रोफेसर, नाट्य विभाग, वनस्थली विद्यापीठ :

☞ नाटक में संगीत का क्या महत्व है?

नाटक में संगीत एक बहुत महत्वपूर्ण रोल अदा करता है एक ऐसा अंग है संगीत। बिना संगीत के नाटक नीरस है। मान लीजिए कि कोई महिला सोला श्रृंगार में सुंदर लगती है और एक विधवा महिला, रंगहीन। इसी तरह अगर नाटक में संगीत नही है तो रंगहीन एक विधवा की तरह है और संगीत किसी नाटक में है तो एक सोला श्रृंगार की हुई महिला के समान है। बिना संगीत के नाटक अधूरा है।

☞ नाटक में किस तरह का संगीत आज–कल प्रचलन में है या किस तरह से इसको काम में लेना चाहिए?

50–100 साल पहले एक ही विधा प्रचलन में थी लेकिन हम आज की बात करें तो दो तरह का संगीत होता था–

1. Recorded Music
2. Live Music

Recorded Music- को हम पहले Record कर लेते है और फिर उसको Play कर लेते है।

Live Music- Musician के साथ ही होते है। जो Seen चल रहे है उसके According और जो गाने है वो Time पर Play करते है। वो Live है।

आज तो बहुत सुबिधा हो गई है कि किसी भी नाटक में संगीत Play करने के लिये सी.डी. या Recorded Music play कर सकते है। पहले इतनी सुविधा नही होती थी कि उसको Record करके बार–बार चला लें।

जी है पहले Technology के तौर पर हम पीछे थे आज का युग मशीन का युग है आज कम्प्यूटर आ गये है, कम्प्यूटर से पहले भी 100 साल पहले से मशीनें तब से जबरदस्त आने लगी है तो मानवों का जो काम है वो मशीनों ने ले लिया है। पहले Live इसीलिए ज्यादा Music इस्तेमाल करते थे क्योकि पहले आपके पास इस तरह की मशीनरी नही थी या थी तो बहुत बड़े लेविल पर थी जो हर कोई उसको Afford नही कर सकता था तो ऐसे में क्या है कि Musician की कीमत थी, संगीतकारों की Value थी। आज मशीनरी आ गई है तो धीरे–धीरे वो चीज खतम हो रही है और Recored का जमाना ज्यादा आ रहा है बनिस्पद Live के। मशीनरी ने धीरे–धीरे जो हमारे कलाकार थे उनको पीछे ढ़केल दिया है। इसीलिए हम आज की दृष्टि मे नजर डालते है तो Drama में बहुत कम ऐसे Group है जहां पर Live Musician देने वाले लोग उस मण्डिली के साथ जुड़े हुए है। अब हमें हायर करना पड़ता है। नही तो पहले ऐसा था कि रंगमंण्डल हुआ करते थे, जो नाट्य संस्थाएं हुआ करती थी, उनके अपने दो–पांच लोग इसी काम को करते थे, वो साथ ही रहते थी Group के। इसको जानने के लिये Music का जो Golden time था पारसी रंगमंच, के दौर में चले जाए लगभग 1900 शताब्दी की बात है 1957 से लेकर 1940 तक के पारसी रंगमंच का बहतरीन दौर था, और पारसी रंगमंच की विशेषता उनकी अभिनय के साथ–साथ बांकी अभिनय, dress, Costume आदि भी बहुत बड़ा Plus Point था।

☞ नाटक में रस की निष्पत्ति संगीत के द्वारा किस प्रकार की जाती है?

जैसाकि हम सभी जानते है कि नाट्य शास्त्र की रचना भरतमुनि ने की, जो कि पंचम वेद के नाम से जाना जाता है। वो पूरा एक विधान है जिस तरह से देश चलाने के लिए Constitution चाहिए उसी तरह ड्रामा, नृत्य, संगीत इत्यादि को समझने के लिए और इसके नियमों को जानने के लिए नाट्य शास्त्र की रचना हुई जिसमें इन तमाम तरह के सब विधान है कि आपका मंच कैसे होगा, अभिनेता कैसा होगा, अभिनय कैसे करेगे ये सब विधान है। उसी में आठवां अध्याय है रस निष्पत्ति का। भरतमुनि का मानना था और उनके बाद भी जितने नाट्याचार्य आये उनका भी ये मानना था कि रस के बिना कोई मजा नही है। जैसे हम खाना खाते है, क्यों खाते है हमें एक फुल्का खाना होता है लेकिन हम दो फुल्के खा लेते है क्योंकि वो स्वादिष्ट होता है तो इससे भी

हमें रस की प्राप्ति होती है वैसे ही जब हम कुछ देखते है तो Feeling का रस उत्पन्न होता है हम देखते है कि good feeling, bed feeling का रस उत्पन्न होता है। वो वास्तविक जीवन में भी होता है। लेकिन जब हम नाटक देखते है नाटक में भी एक रस की निष्पत्ति होती है रस उत्पन्न होता है और रस वो भावों से जुड़ा हुआ है। हास्य, करूण, वीभत्स, भयानक आदि आठ रसों का वर्णन भरत मुनि ने किया है। शांत रस नवां रस बाद में माना है। भरत मुनि ने सिर्फ 8 रसों की व्याख्या की है। तो रस निष्पत्ति बेहद जरूरी है। इसी प्रकार भारतीय नाट्यशास्त्रों ने इस पर बहुत जोर दिया है। भारतीय नाटककारों ने ऐसे ही नाटक लिखे है। अभिनय भी इसी शैली का हमेशा किया गया जिससे रस का निष्पादन हो, रस की उत्पत्ति हो।

☞ नाटकों में कौन से मुख्य रस है जो ज्यादातर प्रयोग में लाये जाते है?

भारतीय नाट्य की बात करें तो नाट्य में श्रृंगार रस का बेहद इस्तेमाल हुआ है चाहे कालीदास हो, चाहे भाष्य हो, भवभूति हो चाहे जो बड़े–बड़े नाटककार हो (संस्कृत नाटककार) सभी ने श्रृंगार रस में ज्यादा लिखा है। इसके बाद वीर रस का बहुत इस्तेमाल हुआ है। वीर रस जो कि हमारी भारत भूमि जो वीरों की भूमि कहलाती है। राजा–महाराजाओं और ऐतिहासिक पर जो प्रकरण प्रसंग को लेकर बने तो वो भी वीरता लिये हुए थे। क्योकि उनकी वीरता का बखान ही उसमें था कि किस राजा ने किस वीरता के साथ में क्या चीज हासिल की। नाटककारों ने वैसा ही लिखा। तो वीर रस का बहुत इस्तेमाल हुआ, इसके अलावा श्रृंगार रस का बहुत इस्तेमाल हुआ, और उसके बाद हास्य रस की श्रेणी बाद में जो विदूषक के रूप में भाष्य ने एक चरित्र की रचना की। क्योंकि नाटक में अगर श्रृंगार रस ही चलता रहे या वीर रह ही चलता रहे तो वोरिंग लगने लगता है। इसीलिये उसमें बीच में हास्य रस का निष्पादन करवाया ताकि एकरसता हो। कई बार हम देखते हैं कि ये चीज एकरसता का शिकार है। नाटक के लिये भी कहा जाता है कि ये नाटक एकरसता का शिकार है। फिल्मों के लिये भी आप इस्तेमाल कर सकते हैं कि किसी फिल्म में झगड़ा हो तो वीर रस या खून–खराबा हो तो वीभत्स रस उत्पन्न होता है। अगर एक ही फिल्म में अलग–अलग रस न हो तो वह चीज दर्शक पसंद नही करते। ये मानव प्रकृति है यानि कुदरत ने हमें ऐसा बनाया है कि हमें अलग–अलग चीजों की आवश्यकता होती हैं तो यही रस कहलाता है। जो इन जीन रसों का बहुत इस्तेमाल हुआ। श्रृंगार, वीर और हास्य। इसके अलावा भी करूण रस का भी इस्तेमाल हुआ है। यूं तो सभी रसों का प्रयोग हुआ है। लेकिन जो ज्यादा नाटक लिखे गये है जो ज्यादा Base है या नाटकों के मुख्य रस है वो ये तीन रस रहे है।

☞ क्या रसों के साथ संगीत में वाद्ययंत्रों का भी प्रयोग होता था?

जब संगीत की बात हम करते है तो बिना वाद्ययंत्रों के संगीत का निर्माण किया ही नही जा सकता। अब रस के अनुसार संगीत का प्रयोग। तो जितने भी पुराने कलाकार रहे वो ज्यादातर हारमोनियम, ढ़ोलक, तबला का इस्तेमाल किया करते थे, क्योंकि ये Base चीज है और ये Base चीज हमेशा प्रचलन में रही लेकिन इसके साथ ही सारंगी का बहुत इस्तेमाल हुआ। वायलिन (आज का नया रूप है) की बात मैं नही करता। लेकिन हम अगर भारतीय वाद्ययंत्रों की बात करें तो हारमोनियम, ढ़ोलक, तबला, सारंगी और सितार इन वाद्ययंत्रों का बहुत ज्यादा इस्तेमाल होता है। इसके बाद संतूर और वीणा आई। अब जैसे करूण रस है तो उसके लिये सारंगी का इस्तेमाल अच्छा लगता है। यूं हारमोनियम अपने आप में एक बड़ा जबरदस्त बाजा है। वो तो सभी रसों को निकालने की क्षमता रखता है अपने आप में। इसलिये उसको Master Key एक तरह से मानते है Music के लिये। वर्तमान में तो Western ज्यादा हो गया है। Technology आ गई है। जैसे सिन्थेसाइजर, पियानो। सिन्थेसाइजर ही अपने आप में इतना बड़ा Item हो गया कि उसमें बहुत सारी आवाजें निकाली जा सकती है। तो Technology ने हमारे कलाकारों को पीछे ढ़केल दिया है, सिन्थेसाइजर अकेला ही दो–तीन लोगों का काम अकेला ही कर लेता है तो ये Western है। तो Western का भी आज इस्तेमाल होने लगा है।

☞ रंगमंच में संगीत युक्त नाटक खेलने के लिये किस तरह की प्रतिक्रियाएं (तत्व) होनी चाहिये ?

इसका ताल्लुक सिर्फ संगीत के नाटकों से नही, हर तरह के नाटकों से है प्रकाश का, मंच–सज्जा का और कपड़ों का जैसे मैंने बात की थी आहार्य में। ये सब आहार्य अभिनय का अंग है। Stage Craft, चाहे आप मंच का निर्माण करें मंच पर आप मंदिर बनाये, मस्ज्जिद बनाये, धर बनाये, बस स्टॉप बनाये, रेलवे स्टेशन बनाये, ड्राईंग रूम बनाये, बेड रूम बनाये जिस तरह की चीजें आप दिखाना चाहते है। उसके Acording light का इस्तेमाल किया जाता है। उसी के अनुसार संगीत का इस्तेमाल किया जाता है। light और संगीत एक दूसरे के साथ चलने वाली चीजें हैं। संगीत पहले आता है। उसके बाद light आती है। आज हम Effect का इस्तेमाल करते है। जैसे आपको Morning दिखाना है तो Morning में पहले Sound से चिड़ियों की चहचहाहट या ऊँ या मस्ज्जिद की अजान की आवाज़ आप दिखायेगे या मुर्गे की वाँग आप सुनाऐगे, और उसके बाद Sunrise होगा तो light आयेगी। वो भावों के हिसाब से जिस तरह का नाटक है

आपका उसी हिसाब से Light होती है। अगर आप बहुत रोमांटिक दिखा रहे है तो Blue लाइट, गुस्सा दिखा रहे हैं तो Red light, हास्य दिखा रहे है तो Yellow light (Simple light)। दिखाया जाता है और उसी तरह का Music होता है। जिस तरह का मूड है जिस तरह का अभिनय चल रहा है। अगर कोई बहुत ही Soft या Romantic seen चल रहा है और उसमें अगर कर्कश म्यूजिक बजेगा तो वो अच्छा नही लगेगा। ये सब चीजें मिलकर उस Seen को Create करती है। उस अभिनेता को Support करती है। ताकि वो अपने भावों का और ऊपर उठाये और अंत में वही रस की निष्पत्ति हो। कि सामने वाला भी Romantic Mood में हो जाए। तो वाद्ययंत्रों का भावों के अनुरूप ही इस्तेमाल होगा।

☞ स्वतंत्रता से पहले रंगमंच में संगीत का और स्वतंत्रता के बाद रंगमंच में संगीत का क्या स्थान रहा?

100 साल पहले तक हमारे पास पारसी रंगमंच था। उसमें आगा हर्ष काश्मीरी, राधेश्याम कथाबाचक, मास्टर बॉकेलाल, फिदा हुसैन बहुत से ऐसे बेहतरीन कलाकार हुए। खुद पृथ्वीराज कपूर जो कपूर खानदान के संस्थापक थे वे खुद भी पारसी रंगमंच के सशक्त साख्यात्कार थे। जिन्होंने खुद ही पृथ्वी थियेटर की स्थापना की।

संगीत का स्थान तो वही है लेकिन अब वाद्ययंत्र बदल गये, चीजें बदल गई। Music तो आज भी बजता है लेकिन आज हम इतने आधुनिक हो गये हमारे पास Technology आ गई है कि अब हमारे पास में Sound Effect बहुत है तो आज के युग में हम Recorded Music का Use करते है। Live Music यानि 100 नाटक Music अगर बनाते है तो उसमें सिर्फ 25 नाटकों में Live होता है। 75% नाटकों में Recorded Music का इस्तेमाल होता है। अच्छा संगीत समझने वाला है तो वो अपने नाटक में उस भावों के हिसाब से उन रागों का इस्तेमाल करता है। Instrumental Music आज बाजार में उपलब्ध है। उनको लेते हैं हम उनके टुकडे काटकर उसके हिसाब से करते है। आज के दौर में Sound Effect का ज्यादा इस्तेमाल कर रहे हैं और पहले के दौर में Live का ज्यादा इस्तेमाल होता था ये फर्क हुआ है आज में और पहले में।

:श्री मुकेश वर्मा, इण्डियन पुपिल्स थियेटर एसोशिऐशन (IPTA), जयपुर :

☞ नाटक में संगीत का क्या महत्व है?

बिना संगीत के नाटक अधूरा है। बिना संगीत के नाटक में कुछ भी नहीं है। जैसे बिना ताल और लय के संगीत नीरस लगता है। जैसे कोई इंसान बोलते समय या चलते समय एक रिदम में न चले तो वो अच्छा नही लगता, उसी तरह बिना संगीत के नाटक रस विहीन होता है।

ऑडियो संगीत लोग प्रयोग करते हैं। थियेटर में तो ऑडियो संगीत भी अच्छा लगता है। लेकिन लाइव में जान होती है। जब स्टेज में खड़े होकर कोई गाना गा रहा हो, ढोलक वाले व तबले वाले बैठे हो और अपने अंदाज से और दिल से भरकर गाये या बजाये तो दर्शक न रोये ऐसा हो नहीं सकता।

☞ नाटक में किस तरह का संगीत आज–कल प्रचलन में है या किस तरह से इसको काम में लेना चाहिए?

नाटक की कहानी के अनुसार ही संगीत का प्रयोग होता है। अब अगर हिन्दी में नाटक कर रहे है तो हिन्दी की भाषा। संस्कृत में है तो संस्कृत, या क्षेत्रीय भाषा है, मणिपुरी, असमिया, गुजराती, बंगाली, मराठी, राजस्थानी भाषा में, जिस भाषा का नाटक लिखा गया है जहां पर आप प्रदर्शित कर रहे। अब हालांकि ऐसा नहीं है कि आप बंगाल में जाकर हिन्दी का नाटक नहीं कर सकते या बंगाल के लोग यहां नहीं कर सकते। भाषा समझने में हमें तकलीफ हो सकती है लेकिन भाव समझ में आ जाता है। भाषा एक कहने का माध्यम है लेकिन ये जरूरी नहीं है कि भाषा आपको नहीं आती तो नाटक भी समझ में नहीं आयेगा। बिल्कुल आता है हमने बहुत से ऐसे नाटक देखे हैं जो भाषा का ज्ञान न होने के बाबजूद भी वो इस तरह से बनाये जाते हैं उनके संवाद और खासकर अभिनेता का जो अभिनय है और जो वो काम करते हैं उससे हमें स्टोरी लाइन और उनके भावों का पता चल जाता है। तो भाषा कोई बाध्यता नहीं है। अपने क्षेत्र के हिसाब से लोग और अपने दर्शकों के हिसाब से भाषा का चयन करते हैं। जैसे राजस्थान में ज्यादातर राजस्थानी भाषा की हम सब मांग करते हैं। हमने कहा कि तृतीय भाषा में इसको शामिल भी करो मुहिम भी चलाते हैं लेकिन फिर भी यहां हिन्दी समझने वाले बहुत हैं वो यहाँ हिन्दी नाटकों का ज्यादा प्रचलन है वनस्पद राजस्थानी के। राजस्थान के दो–चार ग्रुप हैं। वो कभी–कभी साल में एकआद नाटक करते है। चूंकि यहां हिन्दी समझने वाले है जो दर्शक जिस श्रेणी का होता है उसी भाषा का Generally इस्तेमाल किया जाता है।

☞ नाटक में रस की निष्पत्ति संगीत के द्वारा किस प्रकार की जाती है?

ये नाटक पर निर्भर है कि अगर वो काम को लेकर कोई नाटक तैयार कर रहे है और वो पुराने रंगमंच का है तो इसमें रस अलग–अलग हुआ करते थे और आज का नया अभिनेता जो नाटक करता है उसको रस ही नही मालूम कि वह किस रस में डॉइलॉग बोल रहा है या किस रस में वो बात कर रहा है।

☞ नाटकों में कौन से मुख्य रस है जो ज्यादातर प्रयोग में लाये जाते है?

नाटकों में बैसे तो चार रसों का प्रयोग होता है। करूण, श्रृंगार, वीर और हास्य। इन चार रसों में सबसे ज्यादा जो प्रयोग होता है वो हास्य रस है क्योंकि हास्य रस का प्रचलन ज्यादा है। कोशिश ये होती है कि हास्य को लिया जाए जिससे कि दर्शकों को भी देखने में अच्छा लगें और मज़ा आये।

☞ क्या रसों के साथ संगीत में वाद्ययंत्रों का भी प्रयोग होता था?

वाद्ययंत्रों का बहुत प्रयोग होता था। अगर रोने जैसा माहौल है तो वो वाद्ययंत्रों का उस तरह से प्रयोग होता था, रागें उस तरह की गाई जाती थी कि रस उसी तरह से उत्पन्न होता था कि दर्शकों को रोना आ जाए। तो पहले वाद्ययंत्रों का प्रयोग अधिक मात्रा में होता था। लेकिन आजकल रिकॉडिड म्यूजिक का इस्तेमाल ज्यादा होता जा रहा है और वाद्ययंत्रों का कम।

:श्री दिलीप भट्ट, लोकनाट्य तमासा, जयपुर :

☞ नाटक में संगीत का क्या महत्व है?

नाट्य शास्त्र में सारी चीजें आती है। अभिनय, रस, भाव, नृत्य, गायन, वादन, गद्य, पद्य। संगीत इनकी आवश्यकता है। क्योंकि संगीत में सात स्वर हैं नाटक में भी स्वर होते है। एक Guidence होता है, एक रिदम होती है, एक ताल होती है। तो नाटक जब हम करते हैं तो एक रिदम के द्वारा करते हैं। पौराणिक जो लोक कथाएं या लोक नाट्य है उनमें संगीत के द्वारा सुरूआत होती है। मनोरंजन केवल शब्दों से नही होता मनोरंजन हास्य भी होता है। मनोरंजन संगीत से, भाव से, नृत्य से भी होता है। जब तक नाटक में भाव, रस और संगीत नही होता तब तक नाटक अधूरा लगता है। तो नाटक में संगीत का होना बहुत जरूरी है।

☞ रंगमंच में संगीत का विविधात्मक प्रयोग किस प्रकार होता है?

जब हम नाटक की शुरूआत करते है, चाहे वो भरत का नाट्यशास्त्र हो, चाहे आज का लोकसंगीत हो, चाहे आधुनिक थियेटर हो, चाहे लोक मंच हो, तो कहीं न कहीं हमारे हिन्दू नाट्य क्षेत्र में ये माना जाता है कि गणेश वंदना से ही शुरूआत की जाए चाहे वह नौटंकी हो या तमाशा हो सभी में वंदना संगीत से ही शुरू की जाती है। अगर काव्य है तो वो संगीत के स्लोक से शुरू होता है। रंगमंच में संगीत का उपयोग बहुत जरूरी है। ये शैलियां खत्म होती जा रही हैं। इसलिये लोग नाटक को देखने लगे है पसंद भी करने लगे हैं। इसका उपयोग होने लगा है। संगीत हमको जोड़ता है। पुराने गानों को जोड़ा जाने लगा है मतलब पौराणिक गाने फिर से आने लगे हैं।

☞ संगीत का सर्वप्रथम प्रयोग (हिन्दुस्तानी संगीत) किस तरह के नाटकों में हुआ है?

संगीत का सर्वप्रथम प्रयोग जहां तक हिन्दुस्तानी संगीत का सवाल है, तो चाहे वो भोपाल के रंगमण्डल को ले लो, चाहे विजय तेन्दुलकर को ले लो, चाहे मणि मधुरकर को ले लो, चाहे जयपुर के जितने भी नाटककार है उनके नाटक ले लो, चाहे मनु भारती, अंकुर जी, नादिरा जी, उत्तरा भारती जी, तो वो नाटक को संगीत से जोड़ने का प्रयास इसलिये करते है कि नाटक की जो थीम है एक नाटक का जो Concept हो वो अच्छा लगना चाहिए। हम Recording करते है वो Natural होनी चाहिए। संगीत में चाहे राग हो चाहे सुगम संगीत हो सभी चीजें उसी से जुड़ी हुई है।

☞ गायन, वादन व नृत्य तीनों का किस प्रकार समावेश किया जाता है और उसमें ज्यादा प्रबलता किसकों दी जाती है?

गायन, वादन व नृत्य तीनों का ही समावेश बहुत जरूरी है। आज के नाटक को बिना संगीत के Presentation करने की मैंने कोशिश नही की या की तो मैं ही मात खाता हूं क्योंकि जब तक नाटक में ताल नही हो मनोरंजन न हो, बिना संगीत के नाटक लोग पसंद नही करते। जब तक सारे समीकरण हमारे नाटक में नही होगें तब तक बोरियत महसूस होगी। क्योंकि नाटक का मतलब है नाट्य। नाट्य और नाटक का मतलब है एक लय, ताल, नृत्य, भाव, रस, अभिनय, संगीत आदि सभी का होना आवश्यक है। तीनों में से अगर एक को भी निकाल दिया जाये तो नाटक सफल नही हो सकता।

☞ आजकल किस तरह के संगीत का प्रयोग किया जाता है (आपके विचार में)?

आजकल पाश्चात्य संगीत हावी होता जा रहा है। लोगों की आवश्यकता के अनुसार ही संगीत का प्रयोग किया जाता है जो चले वही। आजकल भज़न गायकी खत्म हो गयी है, शास्त्रीय संगीत भी खत्म हो गयी है मतलब कम पसंद करते है। कुछ लोग थियेटर को दूर ले जा रहे है क्योंकि टेक्नोलॉजी इतनी आगे बड़ गयी है कि लोग समय को देखते हुए लाइव कम पसंद करने लगे हैं।

☞ स्वतंत्रता से पहले रंगमंच में संगीत का और स्वतंत्रता के बाद रंगमंच में संगीत का क्या स्थान रहा! तथा किस तरह का परिवर्तन आया?

1947 से पहले का संगीत ले लें, राजा महाराजा संगीत को बैठकर सुनते थे। संगीत मंण्डली हुआ करती थी। मण्डली के लोग संगीत को विस्तार से गाते व बजाते थे। पहले के संगीत को आज भी हम याद करते है। उनको कभी भुलाया नही जा सकता। वेगम अख्तर, पं. जसराज, पं. भीमसेन जोशी को सुनते ही ऐसा लगता है कि वाह क्या गाया है! क्या गायक हुआ करते थे। लेकिन आज की पीढ़ी को वो पसंद नही आता। आज कल लोगों को समय की कमी होने के कारण कानों में हेड फोन लगाकर या गाड़ी चलाते समय गाने सुनते है और उन्हें आज के गाने ही पसंद आते है। तो आज के और पहले के संगीत में यही परिवर्तन आया है।

☞ नाटक में रस की निष्पत्ति वाद्ययंत्रों द्वारा किस प्रकार की जाती है?

पहले पुराने वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया जाता था जैसे रावण हत्था Entry लेते समय बजाया जाता था। चाहे अलगोजा लीजिए चाहे हारमोनियम को अपने गले में बाधंकर लेते थे व ढोलक को कमरे में बांधकर Entry लेते थे। लाइव Entry होती थी। आज वो चीज खत्म हो गयी है। हम अपनी चीज को समाएं हुए है, इसलिये हम जीवित है व हमारा नाम जाना जाता है। हमारी धरोहर एक विरासत है इसलिये हम संगीत से जुड़े हुए है, आधुनिक थियेटर से भी जुड़े हुये है। इसको Balance करके चलाते है अगर Balance करके थियेटर को चलाना है तो ही आप Media में जीवित रहेंगे, थियेटर के अंदर, दर्शकों के बीच जीवित रहेगे।

☞ विविध वाद्ययंत्रों संगीत संयोजन किस प्रकार होता था?

पहले एक तारा का प्रयोग करते थे। हारमोनियम, तबला, ढोलक, तानपूरा, पखावज, वीणा, मृदंग ये सब वाद्ययंत्र पौराणिक काल से चले आ रहे हैं। कमायचा, खड़ताल आदि पुराने वाद्ययंत्र है जो आज भी प्रयोग में लाये जाते है। सुर को साधने के लिये हम साधना करते हैं। वो ठीक है कि आज इलेक्ट्रानिक तानपूरा, तबला, स्वर लहरा आदि चीजें आ गई हैं जिससे कलाकार को गाने में आसानी हो गयी है। समय की बचत हो गयी है। लेकिन पौराणिक (मैनुअल) चीजें का मुकाबला नही किया जा सकता। पौराणिक चीजें आज भी जीवित है और हमेशा जीवित रहेगी।

:श्रीमती अर्चना श्रीवास्तव, एसोसिएट प्रोफेसर नाट्य विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर :

☞ नाटक में संगीत का क्या महत्व है?

नाटक में संगीत का बहुत महत्व है क्योंकि संगीत और ध्वनि के जरिये दृश्य को साकार किया जा सकता है। संगीत और ध्वनि नाटकों में दृश्य को दिखाने में बहुत मदद करता है। साउण्ड रिकॉर्ड और ध्वनि संगीत भाव को ज्यादा मुखर करता है। अगर भाव करूण रस का है जो भी मूंड है उसको भी ज्यादा सपोर्ट करता है। जिस भी राग की बात करें अगर वो करूण के साथ जा रहा है या हास्य के साथ जा रहा है तो उस रस को प्रमुखता से रेखांकित करने में मदद करता है।

☞ नाटक में किस तरह का संगीत आज–कल प्रचलन में है या किस तरह से इसको काम में लेना चाहिए?

नाटक में संगीत का Backgroud स्कोर होता है। नाटक के हिसाब से ही जैसे आपने कोई अलाप ले लिया या संतूर बजा दी या वीणा बजा दी, इसमें Backgroud Music देना होता है। नाटक में संगीत दो तरह का दिया जाता था– 1. लाइव संगीत 2. रिकॉडिड संगीत।

☞ आज किस तरह का संगीत है लाइव या रिकॉडिड?

आज तो ज्यादातर रिकॉडिड संगीत ही प्रयोग किया जाता है क्योंकि आजकल गाने व बजाने वाले (वाद्ययंत्र वाले) मिलते नहीं हैं या मिलते हैं तो बहुत ज्यादा मंहगे होते हैं और रंगमंच में बहुत ज्यादा पैसा नहीं हैं। तो जो भी नाटक हो रहा है वो लोग कोशिश करते है कि बहुत ज्यादा जरूरी है तो ही Live करते है नही तो Recorded Music ही करते है। पहले जो अभिनेता होते थे वो अभिनय के साथ–साथ गाते भी थे। लेकिन अब नही होते क्योंकि अब वो Musical Plays नही होते हैं। पारसी थियेटर की बात करते है तो वो नाटक सांगीतिक होते थे राम पर आधारित होते थे या कृष्ण पर आधारित होते थे।

☞ नाटक में रस की निष्पत्ति संगीत के द्वारा किस प्रकार की जाती है?

ये निर्भर करता है कि नाटक की संरचना कैसी है। आजकल के नाटक यथार्थवादी ज्यादा होते हैं। यथार्थवादी में Music उस तरह का नही होता कि पूरा Musical हो। उसमें सीन को मजबूती देने के लिये कहीं तबला बज गया, कहीं मृंदगम बज गया, तो निर्भर करता है नाटक की शैली

पर। लेकिन Musical नही होता यथार्थवादी होता है। Folk नाटकों, लोकनाटकों में होता है जैसे– नौटंकी, रामलीला, रासलीला, ख्याल आदि अलग–अलग स्टेट में जो होते है। Folk में वहीं के आर्टिस्ट और वहीं के वाद्य होते है। यथार्थवादी नाटकों में ज्यादा Music का समावेश नहीं है सिर्फ इतना बस है कि नाटक को आगे बढ़ाने में, गति देने में और नाटक में मूड को Create करने के लिये होता है।

☞ नाटकों में कौन से मुख्य रस है जो ज्यादातर प्रयोग में लाये जाते हैं?

नाट्यशास्त्र में आठ रसों का विवरण भरत मुनि ने किया है। नाटकों में ज्यादातर करूण, श्रृंगार और हास्य। एक अभिनेता ने एक भाव प्रदर्शित किया और वह दुखी है तो करूण रस की निष्पत्ति हो रही है या खुश है तो हास्य रस की, ये तो भाव से जुड़ा हुआ है। रस और भाव दोनों एक दूसरे के पूरक हैं तो नाटक में भी रस की निष्पत्ति होती है। अगर अपने अंदर हल–चल होती है जब हम कोई नाटक देख रहे हैं या कोई सीन देख है या कुछ पढ़ रहे हैं जो कोई अभिनेता जो भाव प्रदर्शित करेगा उससे रस की निष्पत्ति होगी। इन रसों में सबसे ज्यादा जो प्रयोग होता है वो हास्य रस है क्योंकि हास्य रस का प्रचलन ज्यादा है।

☞ गायन, वादन व नृत्य तीनों का किस प्रकार समावेश किया जाता है और उसमें ज्यादा प्रबलता किसकों दी जाती है?

गायन और वादन दोनों में ज्यादा प्रबलता थी और नृत्य में कम थी। नुक्कड़ नाटक में गायन चलता है। उसमें पूरा समूह कोरस का आता है। अपनी बात को लोगों तक पहुंचाता है या नाटक से पहले भी लोगों को इकट्ठा करता है।

☞ स्वतंत्रता से पहले रंगमंच में संगीत का और स्वतंत्रता के बाद रंगमंच में संगीत का क्या स्थान रहा! तथा किस तरह का परिवर्तन आया?

दोनों में ही संगीत का पूरा–पूरा योगदान रहा है। मराठी जो नाटक थे उसमें बहुत ही प्रबल रहा है। कुछ लोग तो संगीत सुनने ही आते हैं कई बार देखते हैं किसी गायक ने अच्छा गाया है उसको देखने और सुनने के लिये लोग लगातार आते हैं।

किस तरह का परिवर्तन आया?

समाज बदला है वैसे ही नाटक भी बदला है। Time और पैसा दोनों ही नही होता है। Technology Internet आ गया है। सारी चीजें Digital हो गयी हैं। जैसे इलेक्ट्रॉनिक तबला,

तानपूरा, लहरा आदि आ गये हैं जिससे कि गायन–वादन में बहुत ही आसानी हो गयी है समय की बचत हो गयी है। पहले लाइव होते थे तबला, तानपूरा आदि मिलाने में धंटों लग जाते थे। इस तरह से रिकॉडिड संगीत बहुत प्रबल हो गया है।

☞ क्या रसों के साथ संगीत में वाद्ययंत्रों का भी प्रयोग होता था?

वाद्ययंत्रों का बहुत प्रयोग होता था। अगर रोने जैसा माहौल है तो वो वाद्ययंत्रों का उस तरह से प्रयोग होता था, रागें उस तरह की गाई जाती थी कि रस उसी तरह से उत्पन्न होता था कि दर्शकों को रोना आ जाए। तो पहले वाद्ययंत्रों का प्रयोग अधिक मात्रा में होता था। लेकिन आजकल रिकॉडिड म्यूजिक का इस्तेमाल ज्यादा होता जा रहा है और वाद्ययंत्रों का कम।

निष्कर्षत :–

सभी रंगमंच कलाकारों से साक्षात्कार करने के बाद निष्कर्षतः ये कहा जा सकता है कि पहले लाइव म्यूजिक का प्रयोग अधिक मात्रा में होता था लेकिन अब समय और पैसे की कमी के कारण ज्यादातर रिकॉडिड म्यूजिक का प्रयोग किया जाने लगा है। कलाकारों को बुलाने के लिये ज्यादा पैसा देना होता है और उनके पास समय कम होता है और रंगमंच में उतना पैसा नही है और नई–नई टेक्नोलॉजी आ जाने के कारण अब वो चीज रिकॉड करके उसको बार–बार चला सकते हैं। इसलिये ज्यादातर लोग रिकॉडिड म्यूजिक का प्रयोग करने लगे हैं।

संदर्भित ग्रंथ

1. शुक्ला, डॉ. धीरेन्द्र (2009) ''हिन्दी नाटक और रंगमंच'' नेशनल पब्लिशिंग हाउस जयपुर एवं दिल्ली, पृष्ठ सं.–195

2. शुक्ला, डॉ. धीरेन्द्र (2009) ''हिन्दी नाटक और रंगमंच'' नेशनल पब्लिशिंग हाउस जयपुर एवं दिल्ली, पृष्ठ सं.–211,215

3. रस्तोगी, गिरीश (1962) ''नाट्य सिद्धांत विवेचन'' शांति मलिक, ज्ञान भारती दिल्ली, पृष्ठ सं. –1–2

4. संगीत पत्रिका सितम्बर–2001

5. डॉ. अज्ञात ''भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास'' पुस्तक संस्थान कानपुर, पृष्ठ सं. –29,32

6. छायानट–69, पृष्ठ सं.–46

7. संगीत पत्रिका, नवम्बर 2013, पृष्ठ सं.–20–21

8. छायानट अंक–58, अप्रैल–जून 1998, पृष्ठ सं.–16

9. रस्तोगी, गिरीश (1962) ''नाट्य सिद्धांत विवेचन'' शांति मलिक, ज्ञान भारती दिल्ली, पृष्ठ सं.–76–77